तालेश्वर ताम्रपत्र और पौरव-वर्मन राजवंश

डॉ. मदन मोहन जोशी [1]

डॉ.विजय बहुगुणा[2]

उत्तरांचल में प्राप्त ताम्रपत्र अभिलेखों में सर्वाधिक प्राचीन ताम्रपत्र अभिलेख होने का श्रेय तालेश्वर ताम्रपत्रों - द्विजवर्मन का वृषताप शासन और विष्णुवर्मन के ताम्रशासन को ही है, ये दोनों ही ताम्रपत्र अल्मोड़ा जनपद के तालेश्वर नामक स्थान से जारी किये गये हैं, तालेश्वर से प्राप्त दोनों ताम्रपत्रों में एक-एक अण्डाकर मुद्रा जुड़ी है। मुद्रा में एक पसरा हुआ वृषभ, उसके नीचे चार-पंक्तियों का मुद्रा-लेख (जिसमें राजाओं के नाम तथा वंशावली उत्कीर्ण है), वृषभ के सामने एक मछली या कछुआ और नीचे संभवतः एक गरूढ़ है, वृषभ के पीछे एक अन्य प्रतीक है जिसे पहचाना नहीं जा सका है, इन सभी प्रतीकों एवं मुदा्र-लेख के ऊपर एक नाग का फण प्रदर्शित है मुद्राओं में संस्कृत भाषा और गुप्त ब्राह्मी लिपि में अग्रांकित लेख उत्कीर्ण है, (Gupte 1915-16: 114-15), यथा -

विष्णुवर्म्मा प्रपा (पौ) त्रस्य पो (पौ) त्रस्य वृषवर्म्मण (:)

ग्निवर्म्म सुतस्येह शासन (-ं) द्विजवर्म्मण (:)

........नुग्रहार्त्थाय साधु संरक्षणाय च

सोमवंशोद्भवो राजा जयत्यमितविक्रम (:)'' ....

गुप्ते के अनुसार इन मुद्राओं में उत्कीर्ण अनेक प्रतीक चिह्नों और मुद्रा लेख को एक सीधी रेखा द्वारा पृथक किया गया है। मुद्राओं में प्रयुक्त लिपि-चिह्नों की अनेक विशेषताऐं गुप्त लिपि से साम्यता रखती हैं लेकिन ताम्रपत्रों के लिपि-चिह्न पर्याप्त बाद के हैं। लिपि-चिह्नों में अनुस्वार का प्रदर्शन व्यंजन के ऊपर एक बड़े वृत के द्वारा किया गया है और विराम-चिह्न का प्रदर्शन एक क्षैतिजिक वक्र द्वारा किया गया है, संख्यात्मक चिह्न- 5, 8, 20, 30, इन अभिलेखों में मिलते हैं, अभिलेख की भाषा प्रायः व्याकरण रहित संस्कृत है, सामान्य आशीष एवं शाप संबंधी पद्यांशों को भी सही नहीं लिखा गया है और इन्हें अधूरा छोड़ दिया गया है, यहॉं तक कि इन्हें पद्यांश कहना भी उचित नहीं है, अभिलेखों में शेष भाग गद्य में लिखा गया है (Gupte 1915-16: 109)

गुप्ते के अनुसार, वर्ण-विन्यास की दृष्टि से 'ब' के स्थान पर सभी जगह 'व' प्रयुक्त हुआ है, 'र' के बाद व्यंजन का द्वित्वीकरण सामान्य नियम की भाँति मिलता है लेकिन 'र' के बाद 'ह' का द्वित्वीकरण और विशेषकर 'अ' और 'य' का द्वित्वीकरण नहीं मिलता है। उच्चारण में अनेक गलतियाँ मिलती हैं, जैसे 'आ' के लिए 'अ'; 'अ' के लिए 'आ' और 'न' के लिए 'त'; 'त्र' के लिए 'त' इत्यादि (Gupte 1915-16: 109) । नौटियाल

[1] आचार्य, इतिहास विभाग, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

[2]असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, वीर शहीद केसरी चंद राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डाकपत्थर (विकासनगर) देहरादून, उत्तराखंड

ताम्रपत्रों में जुड़ी मुद्राओं की लिपि की गुप्त-लिपि से समानता करते हुए अग्रांकित साम्य बतलाते हैं (Nautiyal 1969: 194)] यथा -

(1) 'ग','श' और 'क' अक्षरों के दाँयी ओर की लम्ब रेखाओं के निचले भाग बिना लम्ब वाले अक्षरों की लम्बाई के दुगने हैं।

(2) 'ज' अक्षर की तृतीय क्षैतिज रेखा नीचे की ओर तिरछी झुकी है।

(3) तृतीय पंक्ति में प्रयुक्त 'थ' में बिन्दु का स्थान आड़े दण्ड ने ले लिया है।

(4) 'य' अक्षर का संक्रमणकालीन प्रकार मुद्राओं में मिलता है।

(5) 'स' और 'प' के दाँयी ओर के भाग एक न्यूनकोण दर्शाते हैं।

मुद्रा-लेख के वर्ण-विन्यास का अध्ययन करते हुए गुप्ते ने इस लिपि की अनेक विशेषताऐं गुप्त-लिपि के समान बतलायी हैं, और इन्हीं विशेषताओं के आधार पर मुद्राओं की तिथि चौथी सदी ईस्वी के उत्तरार्द्ध में निश्चित की है (Gupte 1915-16: 112-13) । मुद्राओं के विपरीत ताम्रपत्रों में प्रयुक्त लिपि चिह्नों, विशेषरूप से 'क', 'थ', 'ध', 'न', 'म', 'य' को बाद का विकास बतलाते हुए छठी सदी ईस्वी के उत्तरार्द्ध और सातवीं सदी ईस्वी के पूर्वार्द्ध में रखा गया है (Gupte 1915-16: 113)। सरकार तालेश्वर ताम्रपत्रों की लिपि को छटी सदी ईस्वी की ब्राह्मी-लिपि से समीकृत करते हैं (Sircar 1983: 217) ।

तालेश्वर द्विजवर्मन का वृषताप शासन-पत्र, अभिलेखानुसार राज्य संवत् 5 पौष दिनांक 30 को लिखा गया है, इस अभिलेख का प्रारंभ ''स्वस्ति (।।) पुरन्दर-पुरप्रतिमाद् व्र (ब्र) ह्मपुरात् सकल जगन्मूलोर्वीचक्त-महाभार ....तथा अन्त ....उत्कीर्णान्यराणि सौवर्णकानन्तेनेतिक। - राज्य सं 5 पौष दि0 30'' से होता है। तालेश्वर विष्णुवर्मन का ताम्रशासन अभिलेखानुसार राज्य संवत् 20 मार्गशीर्ष दिनांक 5 को उत्कीर्ण किया गया है, इस अभिलेख का प्रारंभ - ''स्वास्ति (।।) पुरोत्तमाद् व्र (ब्र) ह्मपुरात् सकल भुवन-भव-भंग विभाग ....तथा अन्त ....दूतकः प्रमातार-वाराहदत्तः लिखितभिंद दिविरपति धनदत्तेन उत्की (त्की) र्ण्ण च सौवर्णिकानन्तकेन - रा सं0 20 मार्ग्ग दि 5 ।।'' से होता है।

वाई0 आर0 गुप्ते पुरालिपि के आधार पर इन ताम्रपत्रों का अध्ययन करते हुए यह निष्कर्ष निकालते हैं कि इन ताम्रपत्रों की लिपि और ताम्रपत्रों में जुड़ी हुई मुद्राओं में प्रयुक्त लिपि में काफी अन्तर है और यह अन्तर कम से कम दो सौ वर्षों तक का हो सकता है। मुद्राओं में प्रयुक्त अक्षर (चौथी सदी ईस्वी के उत्तराद्ध) के गुप्त लिपि के समान हैं और तामपत्रों में जो लिपि प्रयुक्त है वह 6वीं सदी ईस्वी से 7वीं ईस्वी की प्रतीत होती है। गुप्ते के अनुसार जो वंशक्रम मुद्राओं में दिया गया है वह ताम्रपत्रों में दिये गये वंशक्रम से भिन्न है, मुद्राओं में इस राजवंश को सोमवंश कहा गया है जबकि ताम्रपत्रों में इन्हें सूर्य और चन्द्र दोनों ही वंशों से सम्बन्धित किया गया है। गुप्ते इन तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकालते हैं कि इन ताम्रपत्रों में प्रयुक्त मुद्राऐं किसी मूल शाही मुद्रा की जाली नकल हैं और साथ ही ताम्रपत्र भी छठी से सातवीं सदी के मध्य जाली तौर पर बनाये गये हैं (Gupte 1915-16: 113-20) ।

वंशक्रम:- जहाँ तक पौरव-वर्मन शासकों के वंशक्रम का सम्बन्ध है ताम्रपत्रों में जुड़ी मुद्राओं से निम्नलिखित वंशक्रम की जानकारी होती है -

विष्णुवर्मन
।
वृषवर्मन
।
श्री अग्निवर्मन
।
द्विजवर्मन

ताम्रपत्रों के पाठ से पता चलता है कि ये क्रमशः (अ) द्युतिवर्मन और (ब) विष्णुवर्मन द्वारा जारी किये गये हैं। इन ताम्रपत्रों और उनमें जुड़ी मुद्राओं के सम्मिलित पाठ से अग्रांकित वंशक्रम निश्चित किया जा सकता है -

अग्निवर्मन
।
द्युतिवर्मन
।
विष्णुवर्मन

इन मुद्राओं और ताम्रपत्रों के आधार पर नौटियाल (Nautiyal 1969: 36) ने अग्रांकित वंशक्रम सुझाया है -

विष्णुवर्मन I
।
वृषवर्मन
।
अग्निवर्मन
।
द्विजवर्मन
।
विष्णुवर्मन II

तालेश्वर ताम्रपत्रों में जुड़ी मुद्राओं (एक द्युतिवर्मन के ताम्रपत्र में और दूसरी उसके पुत्र विष्णुवर्मन II के ताम्रपत्र) में अंकित पाठ के आधार पर थपलियाल ने पौरव-वर्मन शासकों के अग्रांकित वंशक्रम की जानकारी दी है, यथा- विष्णुवर्मन-वृषवर्मन-अग्निवर्मन-द्विजवर्मन (?) (Thapaliyal 1972: 52) । गुप्ते के अनुसार ताम्रपत्रों में दिया गया वंशक्रम, मुद्राओं में अंकित वंशक्रम से थोड़ा भिन्न है। मुद्राओं में यह विष्णुवर्मन से प्रारंभ होता है जबकि ताम्रपत्रों में यह अग्निवर्मन से प्रारंभ किया गया है, ताम्रपत्रों में इनके प्रदानकर्ता का नाम द्युतिवर्मन मिलता है जबकि मुद्राओं में यह द्विजवर्मन की भाँति पढ़ा जाता है (Gupte 1915-16: 115) ।

थपलियाल का मानना है कि प्रथम ताम्रपत्र A का प्रदानकर्ता द्युतिवर्मन निःसन्देह द्वितीय ताम्रपत्र B में वर्णित विष्णुवर्मन (II) के पिता के नामाक्षर के उच्चारण से समानता रखता है, मुद्राओं के प्रदानकर्ता के पिता का नाम और ताम्रपत्रों में द्युतिवर्मन के पिता का नाम अग्निवर्मन बताया गया है, इस आधार पर मुद्राओं का निर्माता (द्विजवर्मन ?) और द्युतिवर्मन समरूपी समरूपी प्रतीत होते है (Thapaliyal 1972: 52) I गुप्ते द्वारा मुद्राओं के लिपि चिह्नों को पाँचवी सदी ईस्वी और ताम्रपत्रों के लिपि-चिह्नों को छठी या सातवीं सदी ईस्वी में रखने (Gupte 1915-16: 112-13) के संबंध में थपलियाल का मानना है कि यह पुरालिपि संबंधी अन्तर संभवतः इस तथ्य के कारण आया है कि- मूल मुद्रा में अक्षरों को एक सीमित स्थान पर अधिक कलात्मकता एवं सावधानी के साथ लिखा गया था जबकि तामपत्रों में ऐसा नहीं किया गया, इस सूरत में विष्णुवर्मन के ताम्रपत्र में जुड़ी मुद्रा मूलतः उसके पिता के किसी ताम्रपत्र की थी, थपलियाल आगे यह परिकल्पना भी करते हैं कि यदि मुद्रा का प्रदानकर्ता (द्विजवर्मन ?) और द्युतिवर्मन दो भिन्न व्यक्ति थे तो पुरालिपि सम्बन्धी अंतर का कारण समय का पीछे होना हो सकता है और यह ताम्रपत्रों के लेख से जाना जा सकता है जिसमें कहा गया है कि ये दान, द्युतिवर्मन (ताम्र0 A) और अग्निवर्मन (ताम्र0 B) के पूर्वजों द्वारा दिये गये थे लेकिन ये अभिलेख अग्नि में जल गये और विवेच्य अभिलेखों को राजाओं द्वारा ताम्रपत्रों के कानूनी स्वामियों की प्रार्थना पर पुनः प्रदान किया गया, मुद्राओं से प्रतीत होता है कि यह दान मूल रूप से द्विजवर्मन द्वारा दिया गया था, उसके अभिलेख जल गये किंतु मुद्राऐं सुरक्षित रह गयीं और इन अभिलेखों के अभ्यर्थियों ने इन मुद्राओं (प्रथम द्युतिवर्मन के शासन काल के दौरान और अन्य को विष्णुवर्मन के शासन काल में) को अपने प्रार्थना-पत्र के साथ प्रस्तुत किया, राजकीय अधिकारियों ने शासनकर्ता राजाओं की मुद्राओं के निर्माण के झंझट से बचने के लिए अथवा यह दर्शाने के लिए कि यह दानपत्र मूलतः द्विजवर्मन ने प्रदान किया था, इन मुद्राओं को नवीन ताम्रपत्रों के साथ जोड़ दिया, थपलियाल का मानना है कि यदि उपरोक्त विवेचन को स्वीकार कर लिया जाय तो यह स्वयंसिद्ध होगा कि द्विजवर्मन और द्युतिवर्मन के पिता अग्निवर्मन II के मध्य कुछ अन्य शासक भी विद्यमान (Thapaliyal 1972: 52-53) I

इन ताम्रपत्रों में जुड़ी मुद्राओं में केवल अग्निवर्मन जिसके नाम के आगे आदर सूचक ''श्री'' का प्रयोग किया गया है, के अतिरिक्त शेष राजाओं के नाम के आगे कोई उपाधि नहीं लगायी गयी है I थपलियाल के अनुसार, ताम्रपत्रों में द्युतिवर्मन के पिता अग्निवर्मन को प्रथम ताम्रपत्र A में कोई उपाधि नही दी गयी है लेकिन ताम्रपत्र B में उसे परम भट्टारक महाराज' कहा गया है I द्युतिवर्मन को ताम्रपत्र B में 'परम भट्टारक महाराजाधिराज 'और ताम्रपत्र B में केवल 'महाराजाधिराज' कहा गया है I विष्णुवर्मन II को उसके ताम्रपत्र B में 'परम भट्टारक महाराजाधिराज' कहा गया है I 'महाराजाधिराज' उपाधि इन शासकों की स्वत्रन्त्र सत्ता को दर्शाती है (Thapaliyal 1972: 53)

गुप्ते और थपलियाल द्वारा किये गये विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि पौरव-वर्मन शासकों द्वारा जारी तालेश्वर ताम्रपत्र स्थानीय इतिहास के एक महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं I गुप्ते के कथनानुसार यदि ये ताम्रपत्र कूट हैं और छठी या सातवीं सदी ईस्वी के मध्य निर्मित हैं तो भी इससे उत्तरांचल के इतिहास में इनका महत्व कम नहीं होता है क्योंकि ये समकालीन इतिहास का पहली बार विधिवत उल्लेख करते हैं I अतः इस काल की जानकारी के लिए इन्हें अन्य स्रोतों के साथ प्रामाणिक रूप से प्रयुक्त किया जा सकता है I वस्तुतः अन्य तथ्यों के प्रकाश में अब यह स्पष्ट हो

गया है कि ये ताम्रपत्र छठी सदी ईस्वी के उत्तरार्द्ध से सातवीं सदी ईस्वी के पूर्वार्द्ध तक के स्थानीय इतिहास की राजनैतिक, धार्मिक, प्रशासनिक तथा अनेक अन्य बातों का सच्चा विवरण प्रस्तुत करते हैं।

अभिलेखों में पौरव-वर्मन शासकों के राज्य का नाम 'पर्वताकर राज्य' बतलाया गया है, जो स्पष्टतः उत्तरांचल के पर्वतीय क्षेत्रों का ही परिचायक प्रतीत होता है। इस राज्य की राजधानी ताम्रपत्रों में ब्रह्मपुर बतलायी गयी है जिसे 'इन्द्र की नगरी' और 'नगरों में श्रेष्ठ' के रूप में उल्लिखित किया गया है। तालेश्वर ताम्रपत्र इसी नगर से जारी किये गये हैं।

इस ब्रह्मपुर की अवस्थिति के विषय में विद्वानों में अनेक मत हैं। ब्रह्मपुर का उल्लेख वारामिहिर (वृहत संहिताः XIV. 30) मार्कण्डेय पुराण (55.50) एवं चीनी-यात्री व्हेनसांग के यात्रा-वृतान्त (Watters 1973: 329) में भी मिलता है। कनिंघम, व्हेनसांग के विवरण को आधार मानकर मो-ती-पु-लो (मतिपुर) को मण्डावर (बिजनौर) से समीकृत करते हैं। मो-ती-पु-लो से ब्रह्मपुर की दूरी व्हेनसांग ने उत्तर दिशा में 300 ली अथवा 50 मील बतलायी है, इस विवरण के आधार पर कनिंघम ने ब्रह्मपुर को रामगंगा तटीय बैराट पट्टन लखनपुर माना है तथा बताया है कि व्हेनसांग ने इसे भ्रमवश उत्तर-पूर्व की जगह उत्तर दिशा में लिख दिया (Cunninghum 1863: 809) । गुप्ते ने भी कनिंघम के इस मत का समर्थन किया है (Gupte 1915-16: 113-20) । फ्युहरर ने ब्रह्मपुर को गढ़वाल स्थित पाण्डुवाला से समीकृत किया है (Fuhrer 1891: 45-46) । गूत्ज ने पौरव वंश का सम्बन्ध शूलिक वंश से जोड़ते हुए उनके राज्य ब्रह्मपुर का विस्तार कुमाऊँ से लेकर चम्बा (हिमांचल) तक माना है और तालेश्वर (जनपद अल्मोड़ा) को ब्रह्मपुर की राजधानी बतलाया है (Goetz 1953: 82) । पॉवेल प्राइस ब्रह्मपुर की स्थिति कत्यूर घाटी में ही मानते हैं (Powell Price 1930: 5-14) । नौटियाल एवं सहयोगियों ने इसे रणिहाट से समीकृत किया है। उपरोक्त मतों में से पॉवेल प्राइस का मत अधिक तार्किक प्रतीत होता है, क्योंकि द्विजवर्मन के वृषताप-शासन की 20वीं पंक्ति में ब्रह्मपुर जनपद के अन्तर्गत कार्तिकेयपुर ग्राम का उल्लेख आता है, इससे ब्रह्मपुर की स्थिति कत्यूर घाटी में ही निश्चित होती है। पौरव-वर्मनों से पूर्व भी कत्यूर घाटी क्षेत्र राजनैतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा है, गुप्तों के काल में इसका उल्लेख समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशास्ति (Fleet 1970: 93) में आता है और इससे पूर्व की कुणिन्द काल की अनेक मुद्राऐं भी इस क्षेत्र से प्राप्त हुई हैं। पौरव-वर्मनों के उपरान्त भी कत्यूरी शासकों ने इस क्षेत्र को महत्वपूर्ण समझ कर अपनी राजधानी यहाँ स्थापित की थी। इस क्षेत्र के महत्व और द्विजवर्मन के वृषताप शासन के उल्लेख के आधार पर ब्रह्मपुर की स्थिति कत्यूर घाटी में ही मानी जानी चाहिए।

अभिलेखों में वर्णित पदनामः- पौरव-वर्मनों का शासन-प्रबन्ध सुसंगठित रहा होगा क्योंकि उनके ताम्रपत्रों में हमें शासन-कार्य का निर्वहन करने वाले पदाधिकारियों/कर्मचारियों की एक विस्तृत सूची मिलती है। यद्यपि अभिलेखों में केवल पदनामों का उल्लेख आया है तथापि अन्य समसामयिक सन्दर्भों के आधार पर उनका कार्य निश्चित किया जा सकता है। तालेश्वर तामपत्रों में अग्रांकित पदाधिकारियों/कर्मचारियों के पदनामों का उल्लेख आया है -

(1) राजा	(19) विषयपति
(2) नृपति	(20) देवद्रोण्याधिकृत
(3) महाराजाधिराज	(21) कारंगिककोट
(4) महाराज	(22) दिविरपति

(5) कुमारामात्य	(23) विनियुक्तक
(6) राजपुत्र	(24) भोगिक
(7) राजामात्य	(25) भागिक
(8) पीलूपति	(26) दाण्डवासिक
(9) अश्वपति	(27) दूतक
(10) गजपति	(28) कटुक
(11) बलाध्यक्ष	(29) गोग्गुलिक
(12) सन्धिविग्रहिक	(30) परिव्राजक
(13) प्रमातार	(31) ब्रह्मचारी
(14) प्रतीहार	(32) अग्निस्वामिन
(15) जयनपति	(33) उत्कीर्णक
(16) महासत्रपति	(34) सेवक
(17) सूपकारपति	(35) कुलचारिक
(18) तगरपति	(36) कारिक

तालेश्वर ताम्रपत्रों में शासक के लिए अनेक नाम- राजा, नृपति, महाराजाधिराज, महाराज- प्रयुक्त हुये हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य में 'राजा' पद अनेक अर्थों में प्रयुक्त मिलता है, उत्तरांचल से प्राप्त विभिन्न प्राचीन अभिलेखों में भी इसका प्रयोग अनेक तरह से हुआ है, लेकिन यह स्पष्ट है कि यह पद शासकीय शक्ति का प्रतीक था और इससे विभिन्न शासकों की राजनैतिक स्थिति का पता चलता है। तालेश्वर अभिलेखों में 'नृपति', पद भी उत्कीर्ण मिलता है। नृपति का शाब्दिक अर्थ 'मनुष्यों का स्वामी' होता है, अतः इस अर्थ में यह पद शासकीय सत्ता के रूप में राजा का ही समानार्थी है। तालेश्वर पत्रों से पता चलता है कि पौरव-वर्मन शासकों ने 'महाराजाधिराज' उपाधि धारण की थी, यह उपाधि केवल पौरव-वर्मन शासकों के स्वतंत्र और सार्वभौम होने का संकेत देती है। 'महाराज' उपाधि कुणिन्द सिक्कों में भी मिलती है, पौरव-वर्मन शासकों के लिए भी यह उपाधि प्रयुक्त की गई है लेकिन यह द्रष्टव्य है कि 'महाराज' पद केवल पूर्वज राजाओं के लिए ही प्रयुक्त किया गया है।

तालेश्वर ताम्रपत्रों में पौरव-वर्मन शासकों में से अग्निवर्मन के नाम के आगे- श्री -प्रयुक्त मिलता है जबकि अन्य शासकों के नाम के आगे यह अनुपस्थित है। 'श्री' का प्रयोग सम्भवतः इस बात को दर्शाता है कि इस वंश के शासकों में अग्निवर्मन का नाम महत्वपूर्ण है। इस संबंध में यदि तत्कालीन भारतीय इतिहास का विश्लेषण किया जाय तो पता चलता है कि स्कंधगुप्त (गुप्त संवत् 136-155 या 455 ईस्वी- 467 ईस्वी) के पश्चात् गुप्त साम्राज्य पतनोन्मुख हो रहा था। गुप्ते ने तालेश्वर पत्रों में लगी मुद्रा की तिथि चौथी सदी ईस्वी के उत्तरार्द्ध में निश्चित की है (Gupte 1915-16: 113-20), इस आधार पर यदि हम इस वंश के दो शासकों, विष्णुवर्मन और वृषवर्मन को स्कंधगुप्त और उसके पूर्वगामी शासकों के काल में रखें तो माना जा सकता है कि समुद्रगुप्त के समय में गुप्त साम्राज्य के करद और आधीनता स्वीकार करने के उपरान्त से अब तक स्थानीय राज्य वैधानिक रूप से परतंत्र ही रहा था, लेकिन बाद में गुप्त साम्राज्य की पतनोन्मुख स्थिति का लाभ उठाकर अग्निवर्मन ने सम्भवतः परतंत्रता का जुआ उतार फेंका और पौरव-वर्मन राज्य की वैधानिक स्वतंत्रता स्थापित की। संभवतः इसी महत्वपूर्ण कार्य को प्रदर्शित

करने के लिए उसके नाम के आगे 'श्री' लगाकर उसे पौरव-वर्मन शासकों में अतिरिक्त सम्मान दिया गया। यदि यह साम्य भविष्य में अन्य तथ्यों के प्रकाश में सही साबित ठहरता है तो इससे स्थानीय इतिहास को एक नवीन दिशा मिल सकती है।

पौरव-वर्मन शासन में सहायता हेतु अनेक मंत्री रहे होंगे, संभवतः तालेश्वर पत्रों में इन्हें ही 'राजामात्य' कहा गया है। 'कुमारामात्य' पद का उल्लेख भी तालेश्वर पत्रों में आया है, यह पद प्रायः सभी कत्यूरी ताम्रपत्रों में भी मिलता है। शाब्दिक अर्थ में यह पद 'राजकुमार के मंत्री या आमात्य' के रूप में एक मंत्री के लिए प्रयुक्त प्रतीत होता है। गुप्त शासन-तंत्र में भी इस पद का उल्लेख मिलता है, गुप्त प्रशासन में अधिकारियों के एक विशेष वर्ग का नाम कुमारामात्य था, वे शान्ति और युद्ध के मंत्री, सेनानायक, सभासद, जागीरदार और जिलाधिकारी समझे जाते थे, उनमें से कुछ राजकुमारों या प्रान्तीय शासकों के अधीन रखे जाते थे, कुमारामात्य के नाम में कुमार शब्द दक्षिण भारत के एलय, पिन, चिक्क या इम्मदि से मिलाया जा सकता है, छोटा शब्द इसका ठीक अर्थ व्यक्त करता है (मजूमदार और साथी 1970: 165-66)। तालेश्वर अभिलेखों में 'राजपुत्र' पद भी प्रयुक्त हुआ है, यह पद सम्भवतः अपने नाम के अनुरूप 'राजकुमार' के लिए प्रयुक्त प्रतीत होता है।

तालेश्वर द्विजवर्मन के वृषताप शासन में 'सन्धिविग्रहिक' पद का उल्लेख आया है। यह पद प्रथम बार गुप्त अभिलेखों मे प्रयुक्त हुआ है। गुप्तकाल और उसके पश्चात् के अभिलेखों में इस पद का अधिकारी विदेश मंत्री था और युद्ध एवं सन्धि जैसे महत्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन करता था। पौरव-वर्मन शासन में भी सन्धिविग्रहिक का कार्य इसी प्रकार का रहा होगा। तालेश्वर अभिलेखों में महासत्रपति पद प्रयुक्त हुआ है, इस पद को गुप्ते ने देवपालकी उत्सव यात्रा के प्रधान के अर्थ में लिया है (Gupte 1915-16: 110-12)। पौरव-वर्मन काल में शुभ अवसरों पर देवपूजा की व्यवस्था का अधिभार भी इसी अधिकारी पर प्रतीत होता है। तालेश्वर ताम्रपत्रों में महासत्रपति के साथ ही 'देवद्रोण्याधिकृत' पद भी उल्लिखित मिलता है, प्रतीत होता है कि ये दोनों पद एक ही व्यक्ति के पास थे जो देव पूजा का प्रधान होने के नाते उत्सव, यात्रा-व्यवस्था, मन्दिरों का संरक्षण, अभिषेक, सम्मार्जन, बलि, चरू, सत्र बनाये रखने के लिए राजा से प्रार्थना करता था और सत्रपति होने के नाते मन्दिरों का संरक्षण एंव उनकी भूमि का प्रंबंध भी करता था।

तालेश्वर ताम्रपत्रों में प्रयुक्त 'दिविरपति' पद स्पष्टतः लेखक वर्ग का प्रधान था, दिविर आलेख-प्रलेख निर्माण एवं राजाज्ञाओं के लेखन का कार्य करते थे। तालेश्वर द्विजवर्मन के वृषताप शासन पत्र का लेखक 'दिविरपति विष्णुदास' तथा विष्णुवर्मन के ताम्रशासन का लेखक 'दिविरपति धनदत्त' थे। तालेश्वर अभिलेखों में प्रतिहार पद का उल्लेख आता है। प्राचीन काल में प्रतिहार तथा महाप्रतिहार महल में आने वाले दूतों तथा अन्य व्यक्तियों/अतिथियों को प्रवेश दिलाने वाले सहायक के रूप में कार्य करते थे (Altekar 1950: 144)। सम्भवतः पौरव-वर्मन काल में भी इस पद का अधिकारी इसी रूप में कार्य करते रहे होगें। तालेश्वर ताम्रपत्रों में 'राजदौवारिक' पद का उल्लेख मिलता है, यह पद उत्तरांचल के अब तक प्रकाशित किसी भी अन्य अभिलेख में नही मिलता है। इस पद का तात्पर्य महल के प्रहरी से सम्बन्धित प्रतीत होता है। 'सूपकारपति' पद भी केवल द्विजवर्मन के वृषताप शासन पत्र में उल्लिखित हुआ है, गुप्ते इसे पाकशाला का प्रधान अधिकारी मानते हैं (Gupte 1915-16: 109-12)।

तालेश्वर अभिलेखों में 'दूतक' पद का उल्लेख आया है यह पद अत्यन्त प्राचीन है और पाणिनी ने भी दूतक का उल्लेख किया है (Agarwal 1955: 412) । इस पद का अधिकारी राजा का प्रतिनिधित्व करता था और विभिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न अधिकारियों को दूतक बना दिया जाता था। बाल्मीकि रामायण में हनुमान (सुन्दरकाण्डम्: 50.995) तथा अंगद (युद्धकाण्डम्: 41.1153) द्वारा दूतकर्म किये जाने का उल्लेख मिलता है। तालेश्वर द्विजवर्मन के वृषताप शासन में दूतक का कार्य सन्धिविग्रहिक तथा प्रमातार, सूर्यदत्त ने और विष्णुवर्मन के शासन-पत्र में दूतक का कार्य प्रमातार, वाराहदत्त ने किया है। तालेश्वर अभिलेखों में बलाध्यक्ष (बलाधिकृत) पद का उल्लेख आया है। गुप्तोत्तर काल में सेना की व्यवस्था एवं संचालन का कार्य महाबलाधिकृत का होता था। इसका कार्य मुख्यतः सैनिक ढंग का था तथापि असैनिक और सैनिक अधिकारियों में कोई प्रत्यक्ष विभाजन नहीं था (मजूमदार और साथी 1970: 165)। गुप्तकाल में यह सेना का सर्वोच्च अधिकारी होता था। बलाधिकृत के नेतृत्व में हस्तिसेना, अश्वसेना एंव पदाति होते थे। अतः अनुमान लगाया जा सकता है कि बलाध्यक्ष, अश्वपति एवं गजपति से बड़ा अधिकारी होता था। तालेश्वर पत्रों में 'पीलूपति' पद का उल्लेख आया है। अर्थशास्त्र में हस्तिघ्यक्ष का उल्लेख मिलता है (अर्थ0: II; अध्यक्ष प्रकार)। पाल और राष्ट्रकूटों के अभिलेखों में भी इस पद का उल्लेख आया है। तालेश्वर अभिलेखों में इस पद का उल्लेख यह महत्वपूर्ण सूचना देता है कि पौरव-वर्मनों का राज्य न केवल पर्वतीय क्षेत्रों तक सीमित था वरन् यह आस-पास के तराई क्षेत्रों तक भी विस्तृत था क्योंकि हाथी एवं ऊँट की सेना इसी क्षेत्र के लिए उपयुक्त रही होगी। अश्वपति पद का उल्लेख भी तालेश्वर अभिलेखों में हुआ है यह पद निश्चय ही अश्वसेना के प्रधान के लिए व्यवहृत किया गया होगा। तालेश्वर पत्रों में वर्णित 'जयनपति' पद को डबराल पैदल सेना के अधिपति के लिए प्रयुक्त मानते हैं (डबराल 2022: 418)।

तालेश्वर पत्रों में प्रयुक्त 'दण्डोपरिक' पद का उल्लेख अभिलेखों में वर्णित पदाधिकारियों की सूची में सर्वप्रथम हुआ है। राजदण्ड का उपयोग करने वाला यह अधिकारी सम्भवतः न्याय-विभाग का प्रधान रहा होगा। तालेश्वर अभिलेखों में वर्णित 'कटुक' पद हर्षकालीन भारत में फौजदारी न्यायालय के अधिकारी के लिए प्रयुक्त होता था (Majumdar 1943: 350) । सम्भवतः पौरव-वर्मन शासन में भी इस पद का उल्लेख इसी सन्दर्भ में हुआ हो। तालेश्वर ताम्रपत्रों में 'विषयपति' पद भी उल्लिखित हुआ है। गुप्तकाल में विषयपति (विषय या जिले का पदाधिकारी) का पद कुमारामात्य नामक राजकीय अधिकारी अथवा आयुक्तक अथवा जागीरदार 'महाराजा' को दिया जाता था, कभी-कभी शासन के काम में श्रेणी-पति, प्रधान लेखक और अन्य स्थानीय मुख्य व्यक्ति विषयपति की सहायता करते थे (मजूमदार और साथी 1970: 167)। तालेश्वर पत्रों में हमें कुमारामात्य एवं विषयपति दोनों पदों का उल्लेख मिलता है सम्भव है कि गुप्त काल की भाँति ही पौरव-वर्मन शासन काल में भी कुमारामात्य का पद विषयपति से सम्बद्ध रहा हो।

'प्रमातार' पद गुप्त कालीन अभिलेखों में 'प्रमातृ' के रूप में मिलता है, इसे भूमि सर्वेक्षण का अधिकारी माना जाता है (Majumdar 1943: 35) । तालेश्वर पत्रों में उल्लिखित 'प्रमातार' को भी भूमि लेखा विभाग के अधिकारी से समीकृत किया जा सकता है क्योंकि भूमिदान से सम्बन्धित इन ताम्रपत्रों के लेखन का कार्य 'प्रमातार' ने ही किया है। विनियुक्तक पद फ्लीट के अनुसार गुप्त काल तथा उसके बाद के अभिलेखों में मिलता है (फ्लीट 1974: 169)। यह गुप्त काल में गर्वनर द्वारा नियुक्त एक अधीनस्थ अधिकारी था। तालेश्वर ताम्रपत्रों में 'भोगिक' एवं 'भागिक' नामक पदों का उल्लेख भी मिलता है। भोग एवं भाग नामक कर प्राचीन काल के प्रमुख

कर थे। 'भोग' भूमि के उपयोग के एवज में और 'भाग' कृषि उपज में राजा का हिस्सा थे, इन्हें एकत्रित करने वाले अधिकारियों को ही भोगिक एवं भागिक कहा जाता था। 'कारिक' एवं 'कुलचारिक' पदों का उल्लेख भी तालेश्वर ताम्रपत्रों में हुआ है, सम्भवतः इन पदों के अधिकारी भी कर वसूलने से सम्बन्धित थे।

तालेश्वर अभिलेखों के आधार पर पौरव-वर्मन शासन की प्रकृति जानने का प्रसास भी किया गया है। नौटियाल तालेश्वर पत्रों का विश्लेषण करते हुये पौरव-वर्मन शासन का प्रेरणा स्रोत गुप्त शासन का बतलाते हैं (Nautiyal 1969: ch. VIII) । नौटियाल के विश्लेषण का आधार मुख्यतः तालेश्वर पत्रों में आये कुछ ऐसे पदाधिकारियों का उल्लेख है जो गुप्तकालीन अभिलेखों में भी मिलते हैं, वस्तुतः गुप्तोत्तर काल में उत्तर भारत में स्थापित होने वाले अनेक राज्यों द्वारा जारी अभिलेखों में इन पदाधिकारियों का उल्लेख मिल जाता है, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इन सभी राज्यों ने अपने शासन प्रबन्ध में गुप्त-शासन से प्रेरणा ली थी वरन् आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार इन राज्यों ने विभिन्न पदों का सृजन किया था। इस प्रकार के प्रभाव की व्याख्या एम0पी0 जोशी, 'पीअर पौलिटी इण्टरॅक्शन' (Renfrew & Cherry 1986) के आधार पर करते हुए बताते हैं कि- प्रत्येक प्रभुत्व सम्पन्न राजनैतिक संगठन अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाये रखने के लिए समानान्तर राजनीतिक क्रिया-कलाप करते रहते हैं और संगठन/संस्था बनाते रहते हैं। भारतीय इतिहास के विभिन्न चरणों में विभिन्न राज्यों द्वारा बनाये गये संगठन इसी आधार पर मिलते हैं। अतः उत्तरांचल के इतिहास के विभिन्न चरणों में विभिन्न राज्यों द्वारा इसी प्रकार के समानान्तर संगठन बनाने की कल्पना की जा सकती है और माना जा सकता है कि चाहे पौरव-वर्मन राज्य हो अथवा कत्यूरी राज्य, सांस्कृतिक परिवर्तन इस प्रकार 'पीअर-पौलिटी संवाद' के जरिये भी हो सकता है (जोशी 1994: 18)।

तालेश्वर ताम्रपत्र मूलतः भूमिदान सम्बन्धी अभिलेख हैं, अतः इनमें प्रदत्त भूमि को स्पष्ट करने के लिए- क्षेत्र, खण्ड, भूमि, जंगल, तोली, सारी जैसे शब्द भूमि-विशेष को स्पष्ट करने के लिए प्रयोग किये गये हैं। इनमें 'क्षेत्र' पद वैदिक काल से ही निरन्तर मिलता है। वेदों में क्षेत्र पद स्पष्ट रूप से विभिन्न भूमि-विस्तार के अर्थ को स्पष्ट करता है (Macdonell & Keith 1912: 210-11) वैदिक काल में जोते हुये खेत, उर्वरा या क्षेत्र भी कहे जाते थे (मजूमदार और साथी 1970: 28)। लेकिन तालेश्वर अभिलेखों में 'क्षेत्र' एक स्थान नाम के प्रत्यय के रूप में प्रयुक्त हुआ है। सामान्यतः प्रत्यय के रूप में यह पद अपने पूर्व पद के क्षेत्र की अभिव्यंजना करता प्रतीत होता है। भगवतगीता (I.1) में भी क्षेत्र प्रत्यय युक्त- धर्म क्षेत्र, कुरूक्षेत्र- जैसे शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुये हैं।

तालेश्वर अभिलेखों में आये क्षेत्र प्रत्यय युक्त शब्द ना केवल भौगोलिक स्थिति के परिचायक हैं, वरन् कुछ शब्द- वृक्षों, धार्मिक-स्थलों, खाद्य-पदार्थों आदि के नाम पर भी आधारित मिलते हैं। अभिलेखों में आये बज्रस्थल क्षेत्र, मध्यमारक क्षेत्र, पर्वतार क्षेत्र, मध्यमपुरक क्षेत्र जैसे नाम भौगोलिक संरचना पर आधारित प्रतीत होते हैं। महासाल क्षेत्र, बुंरासिका क्षेत्र, वट क्षेत्र, दन्तवनिका क्षेत्र, सेम्मक क्षेत्र जैसे नाम वृक्षों पर आधारित प्रतीत होते हैं। तालेश्वर पत्रों में देवक्यतोली क्षेत्र, देवक्य क्षेत्र, कपिलेश्वर क्षेत्र, देवक्यानूप क्षेत्र जैसे नाम धार्मिक स्थलों के आधार पर रखे गये प्रतीत होते हैं, अभिलेखों में मधुफलमूलक क्षेत्र, लवणोदक क्षेत्र जैसे खाद्य-पदार्थों पर आधारित स्थान नामों का वर्णन भी मिलता है। उल्लेखनीय है कि पौरव-वर्मन काल के खेत (क्षेत्र) पर आधारित

नामों को रखने की परम्परा कुमाऊँ में निरन्तर रही है और इसकी पुष्टि हमें यहाँ पाये जाने वाले-रानीखेत, ताड़ीखेत, बैंसखेत, खेती-जैसे वर्तमान स्थलों से होती है।

तालेश्वर अभिलेखों में 'स्थल' प्रत्यय युक्त भूमि नाम भी मिलते हैं, यथा- रजकस्थल, बज्रस्थल इत्यादि। स्थल पद को ऊँचे तल पर स्थित भूमि के लिए प्रयुक्त माना गया है (Sankalia 1944: 54)। संभवतः तालेश्वर पत्रों में प्रयुक्त स्थल प्रत्यय युक्त क्षेत्र भी ऊँचे तल पर स्थित स्थानों के लिए ही प्रयुक्त किये गये हैं। तालेश्वर पत्रों में निचले स्थानों में स्थित स्थलों के लिए भी 'गर्त्ता' प्रत्यय युक्त शब्द मिलते हैं, यथा- कपिलगर्त्ता, करवीरगर्त्ता आदि। पाणिनी ने भी भूगर्त्ता, चक्रगर्त्ता जैसे शब्दों का प्रयोग प्राकृतिक खाई के अर्थ में किया है (Agarwal 1955: 66)। तालेश्वर अभिलेखों में 'तोली' प्रत्यययुक्त पदों का उल्लेख भी हुआ है, यथा- चम्पकतोली, देवक्यतोली, स्कंभारतोली इत्यादि, इन लेखों में तोली प्रत्यय का प्रयोग खेतों के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है।

तालेश्वर ताम्रपत्रों में अनेक आश्रम प्रत्यययुक्त पद भी उल्लिखित हुये हैं, यथा- वारूणाश्रम, अरिष्टाश्रम आदि। आश्रम का आशय; पर्णशाला, महाविद्यालय या तपोवन से माना जाता है (आप्टे 1963: 165)। प्राचीन काल से ही हिमालय का यह क्षेत्र देवभूमि के रूप में प्रसिद्ध रहा है, मानसखण्ड में भी यहाँ स्थित अनेक आश्रमों का उल्लेख आया है।पौरव-वर्मन काल में भी ये शब्द यहाँ स्थित आश्रमों के परिचायक हैं। 'कोट' या 'कोष्ट' प्रत्यययुक्त शब्द भी तालेश्वर लेखों में वर्णित हुये हैं यथा- सकिन्नराकोट, करवीरकोष्टा आदि। 'कोष्ट' का तात्पर्य आवृत या घिरे हुये क्षेत्र से होता है। 'कोट' शब्द 'कोष्ट' का तद्भव रूप है। 'कोट' पद किले या चहारदीवारी के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है, यथा- खगमराकोट (अल्मोड़ा)। तालेश्वर पत्रों में प्रयुक्त 'कोष्ट' या 'कोट' प्रत्यययुक्त ये स्थल संभवतः महत्वपूर्ण सामरिक स्थल रहे होंगे।

तालेश्वर ताम्रपत्रों में- द्रोण, कुल्य, खारि- जैसे भूमि माप के विभिन्न पदों का उल्लेख आया है। इससे पता चलता है कि छठी सदी ईस्वी के उत्तरार्द्ध में भी अल्मोड़ा जनपद और कुमाऊँ में भूमि-माप की परंपरा विद्यमान थी। तालेश्वर पत्रों में आयीं इन इकाईयों का विश्लेषण अग्रांकित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है -

द्रोणवाप:- संस्कृत में 'वप्' का अर्थ बीज बोने से है। प्राचीन अभिलेखों में 'वाप' प्रत्यय लगाकर बीज की मात्रा प्रकट करने की परंपरा मिलती है। तालेश्वर अभिलेखों में द्रोण वाप का उल्लेख मिलता है- 'देवक्यतोली-पंचद्रोणवापं' (ता0 विष्णुवर्मन)। एक द्रोण प्रायः 32 सेर का माना जाता है (विलियम्स 1956: 441)। अन्य मानकों से तुलना करते हुये एक द्रोण वाप 32 सेर या 16 नाली का बताया गया है (रतूड़ी 1980: 113)। कुमाऊँ में द्रोण आज भी 'दुन' के रूप में प्रचलित है। अतः तालेश्वर पत्रों में आये एक द्रोण वाप को हम उतने क्षेत्र से समीकृत करेंगे जितने में 32 सेर बीज छिटक कर बोया जा सके। ब्रिटिश काल में एक नाली को मानकीकृत कर 240 वर्ग गज निश्चित किया गया था जो आज भी कुमाऊँ में व्यवहृत है। इस आधार पर एक द्रोण माप 3840 वर्ग गज क्षेत्र का द्योतक है।

कुल्यवाप:- 'कुल्यवाप' पद भी प्राचीन अभिलेखों में मिलता है। गुप्तकाल में 'कुल्य' पद बहुतायत से उल्लिखित हुआ है (Saltore 1943: 327)। वर्तमान में इस पद का स्पष्ट अर्थ लगाना कठिन है, इसका अर्थ 'कुलि' बतलाया जाता है और एक कुलि आठ द्रोण के बराबर माना जाता है (विलियम्स 1956: 241)। इस आधार पर एक कुलि

वाप उतना क्षेत्र माना जाना चाहिए जिसमें 256 सेर बीज छिटक कर बोया जा सके। ब्रिटिश मानकों के आधार पर यह 30720 वर्ग गज क्षेत्र का द्योतक है।

खारिवापः- पाणिनी ने खारिवाप को द्रोणवाप से बड़ा बतलाया है (Agarwal 1955: 242) । कुमाऊँ में प्रचलित एक खारि 20 द्रोण की मानी जाती है (डबराल 2022: 387)। अतः एक खारिवाप ऐसे भू-क्षेत्र को बतलायेगी जिसमें 20 द्रोण या 640 सेर बीज छिटक कर बोया जा सके। ब्रिटिश मानकों के आधार पर यह क्षेत्र 76800 वर्ग गज क्षेत्र का द्योतक है।

प्रमुख नगरः- तालेश्वर अभिलेखों में- पुर, पुरी- प्रत्यययुक्त स्थलों का उल्लेख मिलता है। संभवतः ये स्थल पौरव-वर्मन काल के प्रमुख नगर रहे होगें। 'पुर' पद एक प्राचीन संस्कृत शब्द है जो नगर का बोध कराता है। वेदों में नगर शब्द का उल्लेख नही है लेकिन यहाँ निःसन्देह पुरों का उल्लेख मिलता है जो कभी-कभी बड़े आकार के होते थे तथा कभी-कभी पत्थर के बने (अश्ममयी) और लोहे (आयसी) होते थे। सौ दिवारों से सुसज्जित (शतभुजी) पुर भी होते थे (मजूमदार और साथी 1970: 27-28)। आर्यों के विस्तार के समय शत्रुओं के पुरों को नष्ट करने के कारण ही वेदों में इन्द्र को पुरन्दर कहा गया है। तैत्तरीय आरण्यक (1, 4, 11) में 'पुर' शब्द केवल दस्युओं के सन्दर्भ में किया गया मिलता है। प्राचीन भारत में पुर शब्द उस क्षेत्र के लिए प्रयुक्त किया गया मिलता है, जो वृहत खाई से घिरा कम से कम एक कोस के घेरे में फैला और बड़े-बड़े भवनों से युक्त हो (विलियम्स 1956: 635)। पुर और पुरी को समानार्थी माना जाता है (Sankalia 1944: 60)। तालेश्वर ताम्रपत्रों में आये प्रमुख 'पुर', 'पुरी' प्रत्यययुक्त स्थानों का वर्णन अधोलिखित है -

ब्रह्मपुरः- तालेश्वर ताम्रपत्र ब्रह्मपुर से ही निर्गत किये हैं। इसकी स्थिति के सम्बन्ध में इस अध्याय के प्रारम्भ में विस्तार से स्पष्ट किया गया है।

कार्तिकेयपुरः- द्विजवर्मन के वृषताप शासन की 23वीं पंक्ति में कार्तिकेयपुर का उल्लेख आता है (Gupte 1915-16: 113-20) तालेश्वर पत्रों में वर्णित इस कार्तिकेयपुर को प्रयाग- प्रशस्ति में वर्णित 'कर्तपुर' से समीकृत किया जा सकता है। तालेश्वर पत्रों में कार्तिकेयपुर की सूचना मिलना महत्वपूर्ण है, क्योंकि अनुश्रुतियों के अनुसार कार्तिकेयपुर की स्थापना एक पुराने शहर 'करवीरपुर' के अवशेषों के ऊपर की गई थी। यह कार्तिकेयपुर आगे चलकर कत्यूरी शासकों की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध हुआ था। प्रतीत होता है कि पौरव-वर्मनों के काल में ही कार्तिकेयपुर की स्थापना और विकास प्रारंभ हुआ तथा कत्यूरियों के आगमन के समय यह इतना विकसित हो गया था कि इसने कत्यूरियों का ध्यान आकृष्ट किया और राजधानी के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

त्रयम्बपुरः- तालेश्वर द्विजवर्मन के वृषताप शासन पत्र में त्रयम्बपुर का उल्लेख - ''त्र (ब्र) ह्मपुरे कार्तिकेयपुरग्रामकस्समज्जाव्यस्ता च भूस्त्रयम्बपुरे ......'' आता है। इससे प्रतीत होता है कि त्रयम्बपुर की स्थिति कार्तिकेयपुर ग्राम के समीप ही थी। कार्तिकेयपुर ग्राम कत्यूर घाटी स्थित वर्तमान बैजनाथ ग्राम या इसके समीपवर्ती कोई और ग्राम रहा होगा जो आगे चलकर विशाल राजधानी नगर के रूप में विकसित हुआ था। इस आधार पर प्रतीत होता है कि त्रयम्बपुर भी बैजनाथ घाटी का कोई ग्राम रहा होगा।

दीपपुरी:- इस नगरी का उल्लेख भी द्विजवर्मन के वृषताप शासन पत्र की 21 वीं पंक्ति में आया है (Gupte 1915-16: 113-20), यथा- ''वि (बि) ल्वकेजयभटपल्लिका बचाकरण ग्रामों दीपपुर्यां ………'' अभिलेख में इसे बचाकरण ग्राम और क्रोडशूर्प्य ग्राम के मध्य स्थित बतलाया गया है, इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यह संभवतः बागेश्वर तहसील में स्थित कोई नगर रहा होगा।

सन्दर्भ

अग्रवाल, वासुदेव शरण, 1955 : 'पाणिनीकालीन भारत वर्ष', चौखम्भा भवन, वाराणसी।

जोशी, एम0पी0 1992 : 'उत्तराखण्ड: पुरातत्व तथा सामाजिक सिद्धान्त'; 'पहाड़'-5/6(सम्पा0) शेखर पाठक परिक्रमा, तल्ला डांडा, नैनीताल; पृष्ठः 1-9

जोशी,एम0पी0 एवं कु0ललित प्रभा जोशी(सम्पा0)1994: उत्तरांचल हिमालय, 'ऋषि', समाज, संस्कृति, इतिहास एवं पुरातत्व, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा।

जोशी, एम0पी0 1998: 'प्रागैतिहासिक मध्य हिमालय', 'मानव', एथनोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसायटी, लखनऊ, वर्ष 26, अंक 1-2 जनवरी-जून 1998 पृ0 69-92।

डबराल, शिव प्रसाद वि0सं0 2022 : उत्तराखण्ड का इतिहास कत्यूरी युग तक भाग-1, बीरगाथा प्रकाशन, दोगडा।

मजूमदार, रमेश चन्द्र, हेमचन्द्र राय चौधरी एव कालिकिंकर दत्त : भारत का वृहत इतिहास, प्रथम भाग, मैकमिलन एण्ड 1970 कम्पनी।

रतूड़ी, हरिकृष्ण 1980 : गढ़वाल का इतिहास, द्वितीय संस्करण, भागीरथी प्रकाशन, टिहरी।

Agarwal, V.S. 1955 : India as known to Panini.

Alterkar, A.S. 1950 : State and Government in Ancient India. Banaras.

Cunninghum, A. 1863 : The Ancient Geography of India. (Ed. S.M. Sastri) Calcutta.

Fleet, John. Faithfull 1970 : Corpus Inscriptionum Indicarum III, third revised edition Reprinted, Indological Book House, Varanasi.

Fuhrer, A. 1891 : The monumental Antiquities and Inscriptions in the north, western provinces and oudh, A.S.I. vol. II (New series). N.W. Provinces and Oudh press, Allahabad.

Goetz, H. 1953 : Journal of the U.P. Historical society 1953. Vol. I, p. 82.

Gupte, Y.R. 1915-16 : "Two Taleswara copper plates". Epigraphia Indica, xiii:109-21.

Majumdar, R.C. 1943 : History of Bengal, Dacca.

Nautiyal, K.P. 1969	:	"The Archaeology of Kumaon including Dehardun", Chowkhamaba Prakashan, Varanasi.
Powell Price, J.C. 1930	:	"Some notes on the early History of kumaon," journal of the U.P. Historical Society, IV (II) : 5-14.
Sircar, D.C. 1983	:	"Select Inscriptions" Vol-1, Motilal Banarasidas, New Delhi.
Thapaliyal, K.K. 1972	:	"Studies in Ancient Indian seals", Akhil Bhartiya Sanskrit Parishad, Lucknow.
Watters, Thomas 1973	:	On Yuan chwang's Travels in India (A.D. 629-645) Reprinted, Munsiram Manoharlal, New Delhi.